९ '२

ओ३म्

श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

वैदिक विचार माला का पुष्प संख्या - ९

शिक्षाप्रद - प्रसंग

लेखक

वैदिक मिशनरी कमलेशकुमार आर्य अग्निहोत्री

प्रकाशक

श्री चुनीलालभाई रूपसीभाई पोपट

प्लॉट नम्बर ६५/६६, वार्ड १० बी.सी. इफ्को कॉलोनी के सामने,

आर्यसमाज मार्ग, गांधीधाम-कच्छ ३७०२०१

कृपया : यह पुस्तिका आप स्वयं आद्योपान्त पढ़िये और अन्य अधिकाधिक व्यक्तियोंको भी अवश्य पढ़वाइये ।

पुनरावर्त्तन

सरल भाषा और मण्डनात्मक शैली में विभिन्न विषयों पर मेरे द्वारा लिखित १०१ पुस्तकें १३ मार्च १९९७ को निर्मित **"वैदिक लेखमाला प्रकाशक न्यास"** मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान) की ओर से बारम्बार प्रकाशित और भारतवर्ष के अनेकानेक नगरों - ग्रामों तथा कुछ बाहर के देशों में निःशुल्क प्रेषित एवं वितरित की गईं उन्हें सर्व कल्याणकारी सत्य सनातन वैदिकधर्म प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी माना गया । यह जानकारी प्रबुद्ध पाठकों से प्राप्त कर मैं अति उत्साहित हुआ, किन्तु कतिपय कारणों से इस 'न्यास' का समन्वय २ मई २००८ को विश्व प्रसिद्ध **"पतञ्जलि योगपीठ हरिद्वार न्यास"** में कर दिया गया । तब सम्बन्धित सत्साहित्यप्रेमियों को बहुत निराशा हुई । तत्पश्चात् -

५ से ९ जनवरी २०११ तक गुजरात प्रान्त के बनासकांठान्तर्गत भाभर नामक कस्बे में सम्पन्न हुए **'यजुर्वेद पारायण बृहद्-यज्ञ'** के अवसर पर मैं प्रचारार्थ रहा । तब वहाँ के निवासी आर्यश्रेष्ठी **श्री अशोकभाई चुनीलालभाई पोपट** ने अपने श्री पूज्य दादा जी **रूपसीभाई करमणभाई पोपट** की पुण्यस्मृति में उन पुस्तकों के प्रकाशन और विभिन्न स्थानों पर प्रेषित करने का व्यय भार स्वीकारते हुए उन्हें **"वैदिक विचार माला"** के नाम से पुनः प्रकाशित करवाते रहने की इच्छा व्यक्त की । अतः मैंने उन पुस्तकों का प्रकाशन कार्य आरम्भ करवा दिया है, जिनको पढ़ कर अनेकों नर नारी आचारण से वैदिकधर्मानुयायी बने, यह सम्बन्धित महानुभाव भलीभाँति जानते हैं ।

स्वाध्यायप्रेमी सज्जनो ! आपको यह विदित ही है कि आज की अधिक व्यस्ततावाले इस युग में अधिकांश व्यक्ति बड़ी पुस्तकों को पढ़ने के लिये समय नहीं निकाल पाते और क्लिष्ट भाषा हो तो उसे समझ नहीं पाते । ऐसी स्थिति में ये सरल भाषा में लिखी लघु पुस्तिकाएँ अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं, और होती रहेंगी । मैं हृदय से चाहता हूँ कि ये **'वैदिक विचार माला'** के पुष्प अधिकाधिक हाथों में पहुँचे, जिससे कि धर्म अध्यात्म तथा कर्मकाण्ड आदि से सम्बन्धित व्यात भ्रान्तियों का निवारण हो । मेरे अपने विश्वास के अनुसार इन पुस्तिकाओं को पढ़कर अनेकानेक स्त्री-पुरुष शाश्वत वेदपथ के पथिक अवश्य बनेंगे ।

यह पुस्तक निःशुल्क हम अपने डाक व्यय से आपके पते पर प्रेषित कर रहे हैं । इसे आद्योपान्त पढ़कर आप अपने विचारों से हमें अवगत कीजियेगा । आपके पत्र प्राप्त होते रहेंगे तो आगामी पुष्प भी हम आपको निःशुल्क सादर समर्पित करते रहेंगे -

लेखक

गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित ३२ वें संस्करण की मझली साइजवाली सटीक श्रीरामचरितमानस के

शिक्षाप्रद - प्रसंग

सत्संग की महिमा

गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी महाराज ने (पृष्ठ ५, ९ और १३ पर) लिखा है -

बिनु सतसंग बिबेक न होई ।... सत्संग के बिना विवेक नहीं होता...

सतसंगत मुद मंगल मूला ।... सत्संगति आनन्द और कल्याण की जड़ है ।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई ।... दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं ।

संग का प्रभाव

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा । कीचहिं मिलइ नीच जल संगा ॥

साधु असाधु सदन सुक सारीं । सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं ॥

पवन के संग से धूल आकाश पर चढ़ जाती है और वही नीच (नीचे की ओर बहनेवाले) जलके संगसे कीचड़में मिल जाती है । साधुके घरके तोता-मैना राम-राम सुमिरते हैं और असाधुके घरके तोता-मैना गिन-गिनकर गालियाँ देते हैं ।

धूमउ तजइ सहज करु आई । अगरु प्रसंग सुगंध बसाई ॥

धुआँभी अगरके संगसे सुगन्धित होकर अपने स्वाभाविक कडुवे पनको छोड़ देता है ।

सन्तों एवं दुष्टों का स्वभाव

(पृष्ठ ६ पर) गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी महाराज तथा (पृष्ठ ८९७ एवं ८९८ पर) श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं -

बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ ।

अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ ॥

मैं संतोको प्रणाम करता हूँ, जिनके चित्त में समता है, जिनका न कोई मित्र है और न शत्रु ! जैसे अंजलि में रक्खे हुए सुन्दर फूल (जिस हाथने फूलोंको तोड़ा और जिसने उनको रक्खा उन) दोनों ही हाथोंको समानरूपसे सुगन्धित करते हैं (वैसे ही संत शत्रु और मित्र दोनोंका ही समानरूपसे कल्याण करते हैं)...

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं । संत मिलन सम सुख जग नाहीं ॥

जगत्में दरिद्रताके समान दुःख नहीं है तथा संतोंके मिलनके समान जगत्में सुख नहीं है ।...

संत सहहिं दुख पर हित लागी । ... संत दूसरोंकी भलाईके लिये दुःख सहते हैं...

भूर्ज तरू सम संत कृपाला । पर हित निति सह बिपति बिसाला ॥

कृपालु संत भोजके वृक्षके समान दूसरोंके हितके लिये भारी विपत्ति सहते हैं (अपनी खाल तक उधड़वा लेते हैं)... .

संत उदय संतत सुखकारी । बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥

...संतोंका अभ्युदय सदा ही सुखकर होता है, जैसे चन्द्रमा और सूर्यका उदय विश्वभर के लिये सुखदायक है ।

सन इव खल पर बंधन करई । खाल कढ़ाई बिपति सहि मरई ॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी । अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥

किन्तु दुष्ट लोग सनकी भाँति दूसरों को बाँधते हैं और (उन्हें बाँधनेके लिये) अपनी खाल खिंचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं । हे... गरुड़ जी ! सुनिये; दुष्ट बिना किसी स्वार्थ के साँप और चूहे के समान अकारण ही दूसरोंका अपकार करते हैं ।

पर संपदा बिनासि नसाहीं । जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं ॥

वे परायी सम्पत्तिका नाश करके स्वयं नष्ट हो जाते हैं, जैसे खेती का नाश करके ओले नष्ट हो जाते हैं ।...

जन्मजात संस्कार

गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज (पृष्ठ ७ पर) लिखते हैं -

बायस पलि अहिं अति अनुरागा । होहि निरामिष कबहुँ कि कागा ॥

कौओंको बड़े प्रेमसे पालिये, परंतु वे क्या कभी मांसके त्यागी हो सकते हैं?

दुर्लभ मनुष्य

गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज ने (पृष्ठ ११ पर) श्री रामजीने लक्ष्मणजी से (पृष्ठ १८४ पर) एवं प्रहस्तने रावण से (पृष्ठ ६७३) पर कहा -

जग बहु नर सर सरि सम भाई । जे निज बाढ़ि बढ़हि जल पाई ॥
सज्जन सकृत सिंधु समकोई । देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ॥

हे भाई ! जगत्में तालाबों और नदियोंके समान मनुष्य ही अधिक हैं जो जल पाकर अपनी ही बाढ़से बढ़ते हैं (अर्थात् अपनी ही उन्नतिसे प्रसन्न होते हैं) । समुद्र - सा तो कोई एक विरला ही सज्जन होता है जो चन्द्रमाको पूर्ण देखकर (दूसरोंका उत्कर्ष देखकर) उमड़ पड़ता है ।...

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी । नहिं पावहिं परतियं मनु डीठी ॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं । ते नरबर थोरे जग माहीं ॥

रणमें शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाते (अर्थात् जो लड़ाईके मैदानसे

भागते नहीं), परायी स्त्रियाँ जिनके मन और दृष्टिको नहीं खींच पातीं और भिखारी जिनके यहाँसे 'नाहीं' नहीं पाते (खाली हाथ नहीं लौटते), ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसारमें थोड़े हैं।...

प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥

जगत्में ऐसे मनुष्य झुंड-के-झुंड (बहुत अधिक) हैं, जो प्यारी (मुँह पर मीठी लगनेवाली) बात ही सुनते और कहते हैं ।...

बचन परम हित सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ॥

हे प्रभो ! सुनने में कठोर परन्तु (परिणाममें) परम हितकारी वचन जो सुनते और कहते हैं, वे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं ।

नीति सम्बन्धी-उपदेश

(पृष्ठ ५८ पर) शिवजी ने सती जी को बताया-

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा । जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा ॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई । तहाँ गएँ कल्यानु न होई ॥

यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरुके घर बिना बुलाये भी जाना चाहिये तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो, उसके घर जाने से कल्याण नहीं होता ।...

श्री मुनि वसिष्ठ जी ने श्रीराम से (पृष्ठ ४७८ पर) कहा-

आरत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥

आर्त (दुखी) लोग कभी विचारकर नहीं कहते । जुआरीको अपना ही दाँव सूझता है ।...

शूपर्णखा ने (पृष्ठ ५५७ तथा ५५८ पर) रावण से कहा-

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ । श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ ॥
संग तें जती कुमंत्र तें राजा । मान तें ग्यान पान तें लाजा ॥

नीतिके बिना राज्य और धर्मके बिना धन प्राप्त करनेसे, भगवानको समर्पण किये बिना उत्तम कर्म करनेसे और विवेक उत्पन्न किये बिना विद्या पढ़नेसे परिणाम में श्रम ही हाथ लगता है । विषयोंके संगसे संन्यासी, बुरी सलाहसे राजा, मानसे ज्ञान, मदिरापानसे लज्जा,

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥

नम्रताके बिना (नम्रता न होनेसे) प्रीति और मद (अहंकार) से गुणवान शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है ।

रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि ।

शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्पको छोटा करके नहीं समझना चाहिये।...

शिवजी ने पार्वती जी को (पृष्ठ ५६० पर) बताया-

नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई ।।

नीचका झुकना (नम्रता) भी अत्यन्त दुःख दायी होता है । जैसे अंकुश, धनुष, साँप और बिल्ली का झुकना ।...

(पृष्ठ ५७५ पर) श्री राम जी ने लक्ष्मण जी को बताया-

सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ।।

भलीभाँति चिन्तन किये हुए शास्त्रको भी बार-बार देखते रहना चाहिये । अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजाको वशमें नहीं समझना चाहिये ।

राखिअ नारि जदपि उर माहीं । जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं ।।

और स्त्रीको चाहे हृदयमें ही क्यों न रक्खा जाय; परंतु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसीके वशमें नहीं रहते ।...

(पृष्ठ ६६२ पर) श्री राम जी लक्ष्मण जी से कहते हैं -

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुंदर नीती ।।

मूर्ख से विनय, कुटिलके साथ प्रीति, स्वाभाविक ही कंजूससे सुन्दर नीति (उदारता का उपदेश),

ममता रत सन ग्यान कहानी । अति लोभी सन बिरति बखानी ।।

क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा । ऊसर बीज बएँ फल जथा ।।

ममता में फँसे हुए मनुष्यसे ज्ञानकी कथा, अत्यन्त लोभीसे वैराग्यका वर्णन, क्रोधीसे शम (शान्ति) की बात और कामीसे भगवान्‌की कथा, इनका वैसा ही फल होता है जैसा ऊसरमें बीज बोनेसे होता है (अर्थात् ऊसरमें बीज बोनेकी भाँति यह सब व्यर्थ जाता है ।...

मानसकार (पृष्ठ ६७९ पर) लिखते हैं -

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद ।

मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम ।।

यद्यपि बादल अमृत-सा जल बरसाते हैं, तो भी बेत फ़ूलता -फूलता नहीं । इसी प्रकार चाहे ब्रंह्माके समान भी ज्ञानी गुरु मिलें, तो भी मूर्खके हृदयमें चेत (ज्ञान) नहीं होता ।...

(पृष्ठ ६८५ पर) अंगद ने रावण से कहा-

प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि ।

जौं मृगपति बध मेंडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि ।।

प्रीति और वैर बराबरी वाले से ही करना चाहिये, नीति ऐसी ही है । सिंह यदि मेढकों को मारे, तो क्या उसे कोई भला कहेगा ?...

ईश्वर-जीव की भिन्नता

श्री नारद जी ने हिमवान् को (पृष्ठ ६३ पर तथा पृष्ठ ८५१ पर) काकभुशुण्डिजी ने गरुड़जीसे कहा-

जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान ।

परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान ।।

यदि मूर्ख मनुष्य ज्ञानके अभिमानसे इस प्रकार होड़ करते हैं तो वे कल्प भरके लिये नरकमें पड़ते हैं । भला कहीं जीव भी ईश्वरके समान (सर्वथा स्वतन्त्र) हो सकता है ?...

जौं सब कें रह ग्यान एकरस । ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस ।।

माया बस्य जीव अभिमानी । ईस बस्य माया गुन खानी ।।

यदि जीवोंको एकरस (अखण्ड) ज्ञान रहे, तो कहिये, फिर ईश्वर और जीवमें भेद ही कैसा ? अभिमानी जीव मायाके वश है और वह (सत्व, रज, तम-इन) तीनों गुणों की खान माया ईश्वरके वशमें है ।

परबस जीव स्वबस भगवंता । जीव अनेक एक श्रीकंता ।।

जीव परतंत्र है, भगवान् स्वतंत्र हैं; जीव अनेक हैं; श्रीपति भगवान् एक हैं ।

प्रभुभक्ति की अनिवार्यता

(पृष्ठ ९७ पर) शिव जी पार्वती जी को कहते हैं -

जिन्ह हरि भगति हृदयँ नहिं आनी । जीवत सव समान तेइ प्रानी ।।

जिन्होंने भगवान् की भक्तिको अपने हृदयमें स्थान नहीं दिया, वे प्राणी जीते हुए ही मुर्दे के समान हैं ।

महानता

राजा प्रतापभानु ने कपटी मुनि से (पृष्ठ १३६ पर) कहा -

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं । गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं ।।

जलधि अगाध मौलि बह फेनू । संतत धरनि धरत सिर सेनू ।।

बड़े लोग छोटों पर स्नेह करते ही हैं । पर्वत अपने सिरोंपर सदा तृण (घास) को धारण किये रहते हैं । अगाध समुद्र अपने मस्तक पर फेनको धारण करता है, और धरती अपने सिरपर सदा धूलिको धारण किये रहती है ।

राक्षस की परिभाषा

शिवजी ने पार्वती जी को (पृष्ठ १४८ पर) बताया -

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जे लंपट परधन पर दारा ।।

पराये धन और परायी स्त्रीपर मन ललचाने वाले, दुष्ट, चोर और जुआरी बहुत बढ़ गये।...

जिन्ह के यह आचरन भवानी । ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ।।

... हे भवानी ! जिनके ऐसे आचरण हैं, उन सब प्राणीयोंको राक्षस ही समझना।

वेष से भ्रान्ति

तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर ।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि ।।

तुलसीदास जी कहते हैं - सुन्दर वेष देखकर मूढ़ नहीं (मूढ़ तो मूढ़ ही हैं) चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं । सुन्दंर मोर को देखो, उसका वचन तो अमृत के समान है और आहार साँप का है । (पृष्ठ १३२ पर)

समय का मूल्य

मानसकार (पृष्ठ २०६ तथा पृष्ठ २०७ पर) लिखते हैं -

तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा । मुएँ करइ का सुधा तड़ागा ।।

यदि प्यासा आदमी पानीके बिना शरीर छोड़ दे, तो उसके मरजानेपर अमृत का तालाब भी क्या करेगा ?

का बरषा सब कृषी सुखानें । समय चुकें पुनि का पछताने ।।

सारी खेती के सूख जाने पर वर्षा किस काम की ? समय बीत जाने पर फिर पछताने से क्या लाभ ? ...

असम्भव

मानसकार के मत में (पृष्ठ २११ पर)

लोभी लोलुप कल की रति चहई । अकलंकता कि कामी लहई ।।

लोभी-लालची सुन्दर कीर्ति चाहे, कामी मनुष्य निष्कलंकता (चाहे तो) क्या पा सकता है ?

शूरवीर की पहिचान

श्री लक्ष्मण जी ने परशुराम जी से (पृष्ठ २१६ पर) कहा -

सूर समर करनी करहीं कहि न जनावहिं आपु ।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु ।।

शूरवीर तो युद्धमें करनी (शूरवीरताका कार्य) करते हैं, कहकर अपनेको नहीं जनाते । शत्रुको युद्धमें उपस्थित पाकर कायर ही अपने प्रतापकी डींग मारा करते हैं ।

सुख सम्पत्ति के अधिकारी

गुरु वसिष्ठजी राजा दशरथ से (पृष्ठ २३० पर) बोले -

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं । जद्यपि ताहि कामना नाहीं ।।

जैसे नदियाँ समुद्रमें जाती हैं, यद्यपि समुद्रको नदीकी कामना नहीं होती ।

तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ । धरम सील पहिं जाहिं सुभाएँ ।।

वैसे ही सुख और सम्पत्ति बिना ही बुलाये स्वाभाविक ही धर्मात्मा पुरुषके पास जाती हैं।

सत्य की महत्ता

(पृष्ठ ३०८ पर) राजा दशरथ जी ने कैकेयी को तथा (पृष्ठ ३५७ पर) श्री राम ने सुमन्त्र को बताया -

नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ।।
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए । बेद पुरान बिदित मनु गाए ।।

असत्यके समान पापोंका समूह भी नहीं है । क्या करोड़ों घुँघचियाँ मिलकर भी कहीं पहाड़के समान हो सकती हैं । 'सत्य' ही समस्त उत्तम सुकृतों (पुण्यों) की जड़ है । यह बात वेद-पुराणोंमें प्रसिद्ध है और मनुजीने भी यही कहा है ।...

धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ।।

वेद, शास्त्र और पुराणोंमें कहा गया है कि सत्यके समान दूसरा धर्म नहीं है।

कर्म-फल-भोग

(पृष्ठ ३४४ पर) राजा दशरथ जी ने श्री राम से (पृष्ठ ३९८ पर) सुमन्त्र ने राजा दशरथ से एवं (पृष्ठ ४४९ पर) देव गुरु बृहस्पति जी ने इन्द्र से कहा -

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी ।।
करइ जो करम पाव फल सोई । निगम नीति असि कह सबु कोई ।।

शुभ और अशुभ कर्मोंके अनुसार ईश्वर हृदयमें विचारकर फल देता है । जो कर्म करता है वही फल पाता है । ऐसी वेदकी नीति है, यह सब कोई कहते हैं।...

जनम मरन सब दुख सुख भोगा । हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा ।।
काल करम बस होहिं गोसाईं । बरबस राति दिवस की नाईं ।।

जन्म मरण, सुख-दुःखके भोग, हानि-लाभ, प्यारोंका मिलना-बिछुड़ना, ये सब हे स्वामी ! काल और कर्मके अधीन रात और दिनकी तरह बरबस होते रहते हैं ।...

करम प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फलु चाखा ।।

.. विश्वमें कर्मको ही प्रधान कर रक्खा है । जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है ।

जागृति

श्री लक्ष्मण जी ने निषादराज को (पृष्ठ ३५५ पर) बताया -

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंच बियोगी ॥
जानिअ तबहि जीव जग जागा । जब सब बिषय बिलास बिरागा ॥

इस जगत्‌रूपी रात्रिमें योगीलोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपंच (मायिक जगत्) से छूटे हुए हैं । जगत्‌में जीवको जागा हुआ तभी जानना चाहिये जब सम्पूर्ण भोग-विलासोंसे वैराग्य हो जाय ।

परोपकार का फल

(पृष्ठ ५६९ पर) श्री राम ने जटायु से कहा -

पर हित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

जिनके मनमें दूसरेका हित बसता है (समाया रहता है), उनके लिये जगत्‌में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है ।

सेवा - धर्म

भरत जी की मान्यतानुसार (पृष्ठ ४२४ पर) भरत जी ने श्री राम जी से (पृष्ठ ४८५ पर) तथा राजा जनक जी से (पृष्ठ ५०४ पर) कहा -

करइ स्वामि हित सेवकु सोई । दूषन कोटि देइ किन कोई ॥

सेवक वही है जो स्वामी का हित करे, चाहे कोई करोड़ों दोष क्यों न दे ।...

जो सेवकु साहिबहि सँकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई । करै सकल सुख लोभ बिहाई ॥

जो सेवक स्वामीको संकोचमें डालकर अपना भला चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है । सेवकका हित तो इसीमें है कि वह समस्त सुखों और लोभोंको छोड़कर स्वामीकी सेवा ही करे।...

स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू । बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू ॥

स्वामि धर्म में (स्वामीके प्रति कर्त्तव्य पालनमें) और स्वार्थमें विरोध है (दोनों एक साथ नहीं निभ सकते) वैर अंधा होता है और प्रेमको ज्ञान नहीं रहता (मैं स्वार्थवष कहूँगा या प्रेमवश, दोनोंमें ही भूल होनेका भय है)

मित्र का कर्त्तव्य

श्रीराम (पृष्ठ ५९१ पर) सुग्रीव से कहने लगे -

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥

जो लोग मित्रके दुःखसे दुखी नहीं होते, उन्हें देखनेसे ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वतके समान दुःखको धूलके समान और मित्रके धूलके समान दुःखको सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने ।

जिन्ह कें असि मति सहज न आई । ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा ॥

जिन्हें स्वभावसे ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसीसे मित्रता करते हैं ? मित्रका धर्म है कि वह मित्रको बुरे मार्गसे रोककर अच्छे मार्ग पर चलावे । उसके गुण प्रकट करे और अवगुणोंको छिपावे ।

देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥

देने-लेनेमें मनमें शंका न रक्खे । अपने बलके अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्तिके समयमें तो सदा सौगुना स्नेह करे । वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्र के गुण (लक्षण) ये हैं ।

कुमित्र का त्याग

आगें कह मृदु बचन बनाई । पाछें अनहित मन कुटिलाई ॥
जा कर चित अहि गति सम भाई । अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई ॥

जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ-पीछे बुराई करता है तथा मनमें कुटिलता रखता है - हे भाई ! (इस तरह) जिसका मन साँप की चालके समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्रको तो त्यागनेमें ही भलाई है ।

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी । कपटी मित्र सूल सम चारी ॥

मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र - ये चारों शूलके समान (पीड़ा देने वाले) हैं ।

स्वार्थी संसार

शिव जी पार्वती जी से (पृष्ठ ५९७ पर) कहते हैं -

सुर नर मुनि सब कै यह रीती । स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥

देवता, मनुष्य और मुनि सबकी यही रीति है कि स्वार्थके लिये ही सब प्रीति करते हैं।

शिक्षाप्रद चर्चा

(पृष्ठ ६०० पर) श्री राम जी लक्ष्मण जी से कहते हैं -

बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा । प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना । जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना ॥

पृथ्वी अनेक तरहके जीवोंसे भरी हुई उसी तरह शोभायमान है, जैसे

सुराज्य पाकर प्रजाकी वृद्धि होती है । जहाँ-तहाँ अनेक पथिक थककर ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इन्द्रियाँ (शिथिल होकर विषयोंकी ओर जाना छोड़ देती हैं ।

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं ॥

कभी-कभी वायु बड़े जोर से चलने लगती है, जिससे बादल जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं । जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होनेसे कुलके उत्तम धर्म (श्रेष्ठ आचरण) नष्ट हो जाते हैं।

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग ।
बिन सइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ॥

कभी (बादलोंके कारण) दिनमें घोर अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं । जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है ।

विषय विकारों एवं ऐषणाओं का प्रबल आकर्षण

काक भुशुण्डि जी ने गरुड़ जी से (पृष्ठ ८४५ पर) कहा-

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥

... किस-किसको मोहने अंधा (विवेक शून्य) नहीं किया ? जगत्में ऐसा कौन है जिसे कामने न नचाया हो ? तृष्णाने किसको मतवाला नहीं बनाया ? क्रोधने किसका हृदय नहीं जलाया ?

ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार ।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार ॥

इस संसारमें ऐसा कौन ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, विद्वान् और गुणोंका धाम है, जिसकी लोभने विडम्बना (मिट्टी पलीद) न की हों ।

श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ॥

लक्ष्मी के मदने किसको टेढ़ा और प्रभुताने किसको बहरा नहीं कर दिया ? ऐसा कौन है, जिसे मृगनयनी (युवती स्त्री) के नेत्र-बाण न लगे हों ।

गुन कृत सन्यपात नहिं केही । कोउ न मान मद तजेउ निबेही ॥
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा । ममता केहि कर जस न नसावा ॥

(रज, तम आदि) गुणोंका किया हुआ सन्निपात किसे नहीं हुआ? ऐसा कोई नहीं है जिसे मान और मद ने अछूता छोड़ा हो । यौवनके ज्वरने किसे आपेसे बाहर नहीं किया ? ममताने किसके यशका नाश नहीं किया ?

मत्सर काहि कलंक न लावा । काहि न सोक समीर डोलावा ॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया । को जग जाहि न ब्यापी माया ॥

मत्सर (डाह) ने किसको कलंक नहीं लगाया ? शोकरूपी पवनने किसे नहीं हिला दिया? चिन्तारूपी साँपिनने किसे नहीं खा लिया ? जगत्में ऐसा कौन है, जिसे माया न व्यापी हो ?

कीट मनोरथ दारु सरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ॥
सुत बित लोक ईषना तीनी । केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ॥

मनोरथ कीड़ा है, शरीर लकड़ी है । ऐसा धैर्यवान् कौन है, जिसके शरीर मैं यह कीड़ा न लगा हो ? पुत्रकी धनकी और लोकप्रतिष्ठाकी इन तीन प्रबल इच्छाओंने किसकी बुद्धिको मलिन नहीं कर दिया (बिगाड़ नहीं दिया) ?

मानस रोग

काकभुशुण्डी जी ने गरुड़ जी को (पृष्ठ ८९८ और ८९९ पर) बताया-

सुनहु तात अब मानस रोगा । जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा ॥

हे तात ! अब मानस-रोग सुनिये, जिनसे सब लोग दुःख पाया करते हैं ।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥

सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) है । उन व्याधियों से फिर और बहुत-से शूल उत्पन्न होते हैं । काम वात है, लोभ अपार (बढ़ा हुआ) कफ है और क्रोध पित्त है जो छाती जलाता रहता है।

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई । उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना ॥

यदि कहीं ये तीनों भाई (वात, पित्त और कफ) प्रीति करलें (मिल जायँ), तो दुःखदायक सन्निपात रोग उत्पन्न होता है । कठिनता से प्राप्त (पूर्ण) होनेवाले जो विषयों के मनोरथ हैं, वे ही सब शूल (कष्टदायक रोग) हैं; उनके नाम कौन जानता है (अर्थात् वे अपार हैं)

ममता दादु कंडु इरषाई । हरष विषाद गरह बहुताई ॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई । कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ॥

ममता दाद है, ईर्ष्या (डाह) खुजली है, हर्ष-विषाद गलेके रोगोंकी अधिकता है (गलगंड, कण्ठमाला या घेंघा आदि रोग हैं) पराये सुख को देखकर जो जलन होती है, वही क्षयी है । दुष्टता और मनकी कुटिलता ही कोढ़ है ।

अहंकार अति दुखद डमरुआ । दंभ कपट मद मान नेहरुआ ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी । त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी ॥

अहंकार अत्यन्त दुःख देनेवाला डमरू (गाँठ का) रोग है । दम्भ, कपट,

मद और मान नहरुआ (नसों का) रोग है । तृष्णा बड़ा भारी उदर वृद्धि (जलोदर) रोग है तीन प्रकार (पुत्र, धन और मान) की प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजारी हैं ।

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका । कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥

मत्सर और अविवेक दो प्रकारके ज्वर हैं । इस प्रकार अनेकों बुरे रोग हैं, जिन्हें कहाँ तक कहूँ ।

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि ॥
पीडहिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि ॥

एक ही रोगके वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत-से असाध्य रोग हैं । ये जीवको निरन्तर कष्ट देते रहते हैं, ऐसी दशामें वह समाधि (शान्ति) को कैसे प्राप्त करे ?...

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी । सोक हरष भय प्रीति बिंयोगी ॥
मानस रोग कछुक मैं गाए । हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए ॥

इस प्रकार जगत्में समस्त जीव रोगी हैं, जो शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोग के दुःखसे और भी दुखी हो रहे हैं । मैंने ये थोड़े - से मानस-रोग कहे हैं । ये हैं तो सबको, परंतु इन्हें जान पाये हैं कोई बिरले ही ।

अहिंसा

काकभुशुण्डि जी (पृष्ठ ८९८ पर) गरुड़ जी से कहते हैं -

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा । पर निंदा सम अघ न गरीसा ॥

वेदोंमें अहिंसाको परम धर्म माना है और परनिन्दाके समान भारी पाप नहीं हैं ।

सन्तोष

काकभुशुण्डी जी ने गरुड़ जी को (पृष्ठ ८६१ पर) बताया -

बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥

सन्तोषके बिना कामनाका नाश नहीं होता और कामनाओंके रहते स्वप्न में भी सुख नहीं हो सकता ।...

ज्ञातव्य - "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।" महर्षि दयानन्द की इस शुभ सम्मति को स्वीकारते हुए हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखने वाली गोस्वामी तुलसीदास जी की सुप्रसिद्ध कृति श्रीरामचरितमानस के वेदानुकूल शिक्षाप्रद प्रसंगों का हमने इस पुस्तिका में संकलन किया है । विश्वास है हमारा यह प्रयास लाभप्रद सिद्ध होगा ।

- लेखक

सत्संकलन

इस पुस्तिका में हमने हिन्दी साहित्य के महान कवि गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित 'श्रीरामचरितमानस' से शिक्षाप्रद प्रसंगों का संकलन किया है । श्रीरामचरितमानस' को हम एक पौराणिक भक्ति काव्य मानते हैं, इतिहास नहीं । त्रेतायुग का प्रामाणिक इतिहास तो केवल श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण ही है । इसके अतिरिक्त 'श्रीरामचरितमानस' की हर मान्यता से हम सहमत नहीं हैं, फिर भी इसके अनेक प्रसंगों को सद्शिक्षा की दृष्टि से उपयोगी मानकर सम्बन्धित श्रद्धालु स्वाध्याय प्रेमियों के हित का ध्यान रखते हुए हमने यह पुस्तिका प्रकाशित करवाई है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी की काव्य प्रतिभा के समक्ष तो हम नतमस्तक हैं, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से हम यह मानते हैं कि वे पुराणों के विद्वान् थे, उन्हें ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद सम्बन्धी यथार्थ ज्ञान नहीं था । उनके युग में ऋषि परम्परा के अनुसार ईश्वरीयज्ञान वेद का प्रचार-प्रसार नहीं होता था । यदि उन्हें वेद एवं वेद प्रतिपादित मान्यताओं का ज्ञान होता तो वे अपने द्वारा रचित काव्य के माध्यम से मानव समुदाय का अधिक हित कर जाते ।

महर्षि दयानन्द की इस शुभ सम्मति के अनुसार कि 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये' हमने यह प्रयास किया है । इस पुस्तिका को पढ़कर पाठक अवश्य ही लाभान्वित होंगे । आगामी प्रकाशित हो रहे ''वैदिक विचार माला'' के पुष्प संख्या (१०) 'मानस के मोती' को भी आप आद्योपान्त अवश्य पढ़ियेगा । उस में भी श्रीरामचरितमानस से चुनी हुई जीवनोपयोगी जानकारियों का उत्तम संग्रह है ।

'वैदिक विचार माला' के माध्यम से हम अधिकाधिक स्वाध्यायप्रेमियों को सत्य शाश्वत सर्व कल्याणकारी मान्यताओं का ज्ञान करा रहे हैं । कृपया इन पुस्तिकाओं को आद्योपान्त पढ़कर आप अपने विचारों से हमें अवगत अवश्य कीजियेगा । आपके सर्व हितकारी मार्गदर्शन से इन पुष्पों की सुगन्ध हम अधिकाधिक महानुभावों तक पहुँचाते रहेंगे ।

पुस्तक प्रकाशन हमारा व्यवसाय नहीं है, हम हृदय से यह चाहते हैं कि वेद विरुद्ध मत-पन्थों द्वारा फैलाये अज्ञानान्धकार में भटक रहा मानव समुदाय सत्य सनातन वैदिक पथ का पथिक बनकर अपने परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करे । हम तो महर्षि दयानन्द के इस आदेश का कि ''अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये'' पालन कर रहे हैं । वैदिक विचार माला के पुष्पों से अधिकाधिक पाठक लाभान्वित हों इस उद्देश्य की पूर्ति में आप हमारे सहायक बनकर इन पुस्तिकाओं को अपने सम्पर्क में आनेवालों तक अवश्य पहुँचाइये -

लेखक

श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट

सर्वकल्याणकारी सत्य सनातन वैदिकधर्म के प्रति पूर्ण आस्थावान

श्रीमती पूराबहिन रूपसीभाई पोपट

प्राप्त जानकारी के अनुसार श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट का जन्म माघ शुक्ल पञ्चमी विक्रम संवत् १९४८ को नगर पारकर जिला थर पारकर के एक सुप्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ । आपकी आजीविका का साधन व्यापार व्यावसाय रहा । आप आरम्भ से ही गो सेवक और परोपकार प्रिय रहे । आपने स्वतंत्रता आन्दोलन में भी अच्छी भूमिका निभाई । आप सदैव प्रसन्नचित्त रहते थे ।

आर्यसमाज नगर पारकर के वार्षिकोत्सव में हिमाचल प्रदेश से पधारे श्री पूज्य स्वामी कृष्णानन्द जी के प्रवचनों से प्रभावित होकर आप विक्रम संवत् १८७६ में आर्यसमाज से जुड़े, और वैदिकधर्म प्रचार-प्रसार के कार्य में तन मन धन से सहयोग करने लग गये ।

भारत विभाजन के पश्चात् आप विक्रम संवत् २००४ को गुजरात प्रान्त के बनासकांठान्तर्गत भाभर नामक कस्बे में सपरिवार आकार बसे, और वहाँ विक्रम संवत् २०१५ को आर्यसमाज की हुई स्थापना में आपने अपना पूर्ण योगदान दिया । अपने सरल स्वभाव, आत्मीय व्यवहार एवं सेवाभाव से आपने बहुत यश पाया । अपने दोनों होनहार सुपुत्रों सर्व श्री लवजीभाई एवं चुनीलालभाई तथा अपनी धर्मपत्नी श्रीमती पूराबहिन को सदैव वेदपथ पर चलते रहने की सत्प्रेरणा प्रदान करते हुए विक्रम संवत् २०१८ को आपने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया ।

श्रीमती पूराबहिन रूपसीभाई पोपट का जीवन सदैव सरल सादगी सेवाभाव एवं परिश्रम प्रिय रहा । आपने अपने श्री पूज्य पतिदेव की सर्व सुविधाओं का पूर्ण ध्यान रखा, और परिवार-कुटुम्ब की समृद्धि में अपना अनुभूत योगदान दिया ।

श्रीमती पूराबहिन ने सम्बन्धित नारी समुदाय के लिये एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करके विक्रम संवत् २०३८ को परलोक गमन किया । ऐसे वैदिक धर्मानुयायी दम्पति को हमारा शत शत नमन - लेखक

प्रेषक
कमलेशकुमार
आर्य अग्निहोत्री
आर्यसमाज मंदिर,
देवलाली बाजार,
कुबेरनगर,
अहमदाबाद
(गुजरात)
पिनकोड ३८२३४०

PRINTED BOOK

प्राप्त कर्ता :